Airo International Research Journal
Peer Reviwed Multidisciplinary Indexed Journal
ISSN: 2320-3714
Volume 23, Issue 1 October 2020

उपनिषदों में मोक्ष पद का अर्थ एवं प्रयोजन

डॉ विवेक पाण्डेय
सहायक आचार्य एवं विभागाध्यक्ष दर्शनशास्त्र
का. सु. साकेत स्नातकोत्तर महाविद्यालय अयोध्या उत्तरप्रदेश

मोक्ष शब्द 'मृच्लृ मोक्षणे' अथवा 'मुच् प्रमोचने मोदने च' धातु से धञ् प्रत्यय का योग करने पर निष्पन्न होता है। इस प्रकार मोक्ष के दो अर्थ होते हैं,माया के बन्धनों से मुक्ति एवंपरमानन्द की प्राप्ति।

वेदान्त दर्शन में कहा गया है कि परमधाम को प्राप्त होकर जीव अपने वास्तविक स्वरूप में प्रकट हो जाता है।[1]मुक्त जीव समस्त प्रकार के बन्धनों से मुक्त हो जाता है।[2]मुक्त जीव या तो परब्रह्म से मिलकर एकरूप हो जाता है या परमेश्वर के समान रूप धारण कर लेता है।[3] इस अभेद के अज्ञान से ही जीव इस संसार रूपी दावानल में तप्त होता हुआ परिभ्रमण करता रहता है–'यत्रहि द्वैतमिव तदिरं इतरं पश्यति।'[4]इसी भेद की अनुभूति के कारण जीव को भिन्न–भिन्न विषयों एवं तद्–ज्ञान की अनुभूति होती है। जीव में भेद की भावना ही उसका मुख्य अज्ञान है और उसके बन्धन का मुख्य कारण है।[5]अर्थात जो द्वैत एवं भेद का दर्शन करता है वह जन्म एवं मृत्यु के चक्र में घूमता रहता है। श्वेताश्वतरोपनिषद् में कहा गया है कि यद्यपि आत्मा 'सच्चिदानन्द' अद्वितीय स्वरूप ही है तथापि अज्ञानवश कल्पना किए हुए ही साधनों से अपनी ईष्ट–प्राप्ति रूप अपुरूषार्थको ही पुरुषार्थ रूप मोक्ष पद प्राप्त न कर सकने के कारण मकरादि के समान रागादि दोषों से इधर–उधर खींचा जाकर, मनुष्य देवता एवं तिर्यक आदि विभिन्न भेदों से युक्त अनेक योनियों में विचरता रहता है।[6]किन्तु जब जीव को अपने पारमार्थिक स्वरूप का ज्ञान हो जाता है, उस समय वह'मुक्त' हो जाता है। यही उसकी 'अमरता' है।

ऋग्वेद में मुमुक्षु शब्द का उल्लेख हुआ है,[7] जिसका अर्थ है मोक्ष ही इच्छा रखने वाला व्यक्ति ऋग्वेद के ही एक अन्य मन्त्र में अमर होने की कामना व्यक्त की गयी है।[8] ऋग्वेद एवं यजुर्वेद में कहा गया है कि हे परमेश्वर!, हम आपकी कृपा से शरीर और प्राण से उसी प्रकार मुक्त हो जाये, जिस प्रकार खरबूजा पकने पर लता के सम्बन्ध से मुक्त हो जाता है। हम मोक्ष सुख से कभी वंचित न हों।[9]

शास्त्रों में अविद्या के नाश एवं आत्मा की अपने स्वरूप में स्थिति को मोक्ष कहा गया है। योग दर्शन में बताया गया है कि पुरुष के द्वारा अपवर्ग प्राप्त करने के बाद महत्तत्व आदि का अपने कारण में लीन हो जाना अथवा चित्ति शक्ति का अपने स्वरूप में स्थित हो जाना मोक्ष है।[10] इस प्रकार पतंजलि के अनुसार ज्ञान होने पर अविद्या द्वारा उत्पन्न दुःख का विनाश ही कैवल्य (मोक्ष) है।[11] मीमांसा दर्शन में कहा गया है कि त्रिविध सांसारिक बन्धनों से सदा के लिए सम्बन्ध विच्छेद हो जाना ही मोक्ष है।[12] न्यायदर्शन में दुःख की आत्यन्तिक निवृत्ति को ही मोक्ष कहा गया है।[13] वैशेषिक दर्शन के अनुसार अदृश्य का अभाव हो जाने पर, कर्मचक्र की गति

का स्वतः अन्त हो जाता है, जन्म–मृत्यु की परम्परा का भी अन्त हो जाता है और सदा के लिए दुःखों से मुक्ति मिल जाती है। इसी को मोक्ष कहते हैं।[14] वायु पुराण में जीव और ब्रह्म की एकता को मोक्ष कहा गया है।[15]

शंकराचार्य के दर्शन में मोक्ष कोई ऐसी नई अवस्था नहीं है जिसे प्राप्त करना है बल्कि मोक्ष एक ऐसी सत्ता के साक्षात्कार का विषय है, जो अनन्तकाल से विद्यमान है, यद्यपि वह हमारी दृष्टि के क्षेत्र से परे हैं। मोक्ष प्राप्त करने का तात्पर्य जीव का स्वयं को वह समझ लेना है जो हमेशा से उसका सहज रूप रहा है, किन्तु जिसे वह कुछ समय के लिए भूल गया है। इस सन्दर्भ में एक राजकुमार का दृष्टान्त है, जिसका लालन–पालन प्रारम्भ से ही एक शिकारी के घर में हुआ, उसे बाद में पता चलता है कि वह एक राजकुमार है।[16] यहाँ वह कुछ नया नहीं हो गया, क्योंकि वह पहले से ही एक राजकुमार था और उसे अब केवल यह समझ आ गयी है कि वह एक राजकुमार है। इसी प्रकार अद्वैतके मोक्ष में भी एक मात्र आवश्यकता उस बाधा को हटाने की है जो वास्तविकता को हमसे दूर करती है। शंकर हमारे सम्मुख ऐसे स्वर्ग का चित्र प्रस्तुत नहीं करते जो इस लोक से पृथक अथवा इस लोक के अनुभव की व्यवस्था से भिन्न प्रकार का है। अपितु ऐसा स्वर्ग जो सर्वदा यहाँ उपस्थित है, यदि केवल उसे हम देख सकते।[17] यह तो कंठ में पड़े उस हार के समान है, जिसे भ्रमवश हम अन्यत्र खोजते हैं और जब ज्ञान होता है तो उसे अपने कंठ में ही प्राप्त कर लेते हैं। पदम्पाद में भी कहा गया है कि मिथ्याज्ञान के अभाव का नाम मोक्ष है– 'मिथ्याज्ञाननिवृत्ति मात्रम् मोक्षः।'

चित्सुखाचार्य का कहना है कि आनन्दमय का साक्षात्कार ही मोक्ष है।[18] आत्मा के तात्त्विक स्वरूप को– जो परमानन्द है, दुःख आवृत्त कर लेता है और अज्ञान इसमें सहायक होता है। अज्ञान के अभाव में दुःख लुप्त हो जाता है और आत्मा का स्वरूप जो विशुद्ध आनन्द है अपने को व्यक्त कर देता है। अतः मोक्ष संसार का विलय नहीं है अपितु केवल एक मिथ्या दृष्टिकोण का मिट जाना मात्र है।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि जब जीव ब्रह्म को जानकर ब्रह्ममय हो जाता है अथवा ब्रह्मलोक में जाकर दिव्य सुख का अनुभव करने लगता है, तब उसकी ब्राह्मी स्थिति को मोक्ष कहते हैं।

मोक्ष का प्रयोजन

वस्तुतः अल्प बुद्धि वाले लोग मोक्ष का अभिप्राय भौतिक सुखों या स्वर्ग एवं नरक की कामना तक सीमित कर देते हैं। किन्तु वास्तविकता यह है कि मनुष्य जीवन का सर्वोच्च लक्ष्य अपने वास्तविक स्वरूप का साक्षात्कार करना ही है। भारतीय चिन्तन–पद्धति ने यह निष्कर्ष निकाल लिया था कि मनुष्य–जन्म को पाकर हमें अपनी समस्त शक्तियों को इस ब्रह्मनिष्ठा की प्राप्ति के लिए नियुक्त करना है। इस मोक्ष से बढ़कर किसी अन्य सुख की कल्पना की ही नहीं जा सकती। अतः ऐसा कौन मूर्ख होगा जो मानुष–जन्म पाकर भी इस मोक्ष रूप स्वार्थ की सिद्धि करने की भूल करेगा।[19]

शम्पाक मुनि इस महासुख को पाकर कहते हैं कि कामनाओं के यहाँ से लेकर स्वर्ग तक फैले हुए बड़े–बड़े सुख भी तृष्णाक्षय से होने वाले मोक्षसुख की सोलहवीं कला को भी नहीं छू सकते।[20] ऋषियों, मुनियों

एवं नीतिज्ञों ने भी मोक्ष को ज्येष्ठतम और श्रेष्ठतम स्थान ही दिया। महाभारत के शान्तिपर्व में युधिष्ठिर मोक्ष की सर्वश्रेष्ठता प्रतिपादित करते हुए कहते हैं कि,

यो वै न पापे निरतो न पुण्ये, नार्थे न कामे मनुजो न धर्मे।
विमुक्तदोषः समलोष्टकांचनः विमुच्यते दुःखसुखार्थ बुद्धे।।[21]

मुक्ति की इसी धारणा ने समग्र हिन्दू चेतना को प्रभावित किया है। जिस भी ज्ञानी सन्तों को विश्वात्मैक्य की अनुभूति हुई उन्होंने इसे अत्यन्त गोपनीय और रहस्य कहा। रहस्य शायद इसलिए रहा हो क्योंकि कुछ भी कहने से बात बिगड़ जाने का भय बराबर बना रहा है। वैदिक युग से लेकर अब तक की ऐसी अनुभूतियों की व्यंजना में सभी को कठिनाई रही है। किसी ने कहा आत्मोपब्धि की यह स्थिति अवर्ण्य है। दूसरों ने कहा ''हाँ,हाँ मैंने उसे पा लिया है। उसे जाने बिना अमरत्व का कोई दूसरा रास्ता नहीं है।[22] लेकिन वह है क्या ? जो पाया है उसे वर्णन करने में असमर्थता देखकर सन्तों ने कहा–

''कथता बकता सुरता सोई। आप विचारै सो ग्यानी होई।''[23]

कहने में जो सबसे बड़ा खतरा है उसका संकेत कबीर ने किया है– 'जस कथिये तस होत नहीं, जस है जैसा सोई।' सन्तों ने मुक्ति को तत्त्व प्राप्ति की अवस्था कहा है।

वेदान्त साधना का यदि कोई प्रयोजन है तो वह है सुख की प्राप्ति और दुःख का नाश। इनमें से सुख की उपलब्धि दुःख नाश वाली बात को गौण बना देती है। आचार्य शंकर ने सुखोपलब्धि द्वारा मुक्ति का विशेष मूल्यांकन किया है। उनके मत में सुख दो प्रकार का है– प्रथम तो है सतिशय सुख एवं द्वितीय है निरतिशय सुख। सतिशय सुख ही विषय सुख है। प्राणी प्रायः इसी का सेवन करते हैं। बृहदारण्कोपनिषद् में कहा गया है कि–

''एतस्यैवानन्दस्यान्यानि भूतानि मात्रामुपजीवन्ति इत्यादि श्रुतेः।
निरतिशयं सुखं च ब्रह्मैव। आनन्दो ब्रह्मेति व्यजानात् इति श्रुतेः।''[24]

अर्थात् इसी आनन्द की थोड़ी–थोड़ी मात्रा को सब प्राणी भोगते हैं। निरतिशय सुख तो केवल ब्रह्म ही है। इसी आनन्दात्मक ब्रह्म की प्राप्ति ही मोक्ष हैं, जिसमे शोक पूर्णतः निवृत्त हुआ रहता है। इस स्थिति में ब्रह्म को जान लेने वाला ब्रह्म होकर ही रहता है। ब्रह्म प्राप्ति से बड़ा कोई लाभ नहीं है और उसके सुख से बड़ा कोई सुख नहीं है और उसके ज्ञान से उच्च कोई ज्ञान नहीं है।[25]ब्रह्मज्ञान प्राप्त करना मनुष्य मात्र का सबसे ऊँचा आदर्श है– ब्रह्मावगतिर्हि पुरुषार्थः। अतः ब्रह्म या अपने सत् स्वरूप का साक्षात्कार सभी मनुष्यों का सर्वोच्च लक्ष्य है, क्योंकि सभी जीवधारियों में मनुष्य ही इसके उपयुक्त हैं। इसी पर उसके जीवन की सफलता और असफलता निर्भर करती है। मानव जन्म अत्यन्त दुर्लभ है, इसे पाकर जो मनुष्य परमात्मा की प्राप्ति के साधन में तत्परता के साथ नहीं लग जाता है, वह बहुत बड़ी भूल करता है। अतएव श्रुति कहती है कि, जब तक यह दुर्लभ मानव शरीर विद्यमान है तभी तक शीघ्र से शीघ्र परमात्मा को जान लिया जाय तो सब प्रकार से कुशल है। अर्थात् मानव जीवन की परम सार्थकता है। संसार के त्रिविध तापों और विविध शूलों से बचने का यही एक परम साधन है कि जीव मानव–जन्म में दक्षता के साथ साधन–परायण होकर अपने जीवन को सदा के लिए

सार्थक कर लें। मनुष्य जन्म के सिवा जितनी भी योनियाँ हैं, सभी केवल कर्मों का फल भोगने के लिए ही मिलती हैं। उनमें जीव परमात्मा को प्राप्त करने का कोई साधन नहीं कर सकता। बुद्धिमान पुरुष इस बात को समझ लेते हैं और इसी से वे प्रत्येक जाति के प्रत्येक प्राणी में परमात्मा का साक्षात्कार करते हुए सदा के लिए जन्म–मृत्यु के चक्र से छूटकर अमर हो जाते हैं।[26]

तैत्तिरीयोपनिषद् में तो उस आनन्द स्वरूप परब्रह्म परमात्मा का यह आनन्द कितना और कैसा है, उस जिज्ञासा पर विस्तार पूर्वक उल्लेख मिलता है। वहाँ आनन्द का विचार आरम्भ करने की सूचना देकर सर्वप्रथम मनुष्य लोक के भोगों से मिल सकने वाले बड़े से बड़े आनन्द की कल्पना की गयी है। कोई मनुष्य जो युवा हो, वह भी ऐसा वैसा मामूली नहीं सदाचारी, स्वस्थ, आशावान, बलवान, अच्छे कर्म वाला, समर्थ एवं सुदृढ़ हो, फिर उसे धन–सम्पत्ति से भरी यह पृथ्वी उसके अधिकार में आ जाय तो यह मनुष्य लोक का 'एक' आनन्द है। जो मनुष्य योनि में उत्तम कर्म करके गन्धर्व भाव को प्राप्त हुए हैं उनको 'मनुष्य–गन्धर्व' कहते हैं। मनुष्य सम्बन्धी सौ आनन्दों को एकत्र करने पर आनन्द की जो राशि होती है, उतना मनुष्य गन्धर्वों का एक आननद है। मनुष्य गन्धर्वों की अपेक्षा देव–गन्धर्वों के आनन्दों को सौ गुना बताया गया है। देव–गन्धर्वों के आनन्द की अपेक्षा चिरस्थायी पितृलोक को प्राप्त दिव्य पितरों के आनन्द को सौ गुना बताया गया है। चिर स्थायी लोकों में रहने वाले दिव्य पितरों के आनन्द की अपेक्षा 'आजानज' नामक देवों के आनन्द को सौ गुना बताया गया है। देव लोक के एक विशेष स्थान का नाम 'आजान' है, जो लोग स्मृतियों में प्रतिपादित किन्हीं पुण्य–कर्मों के कारण वहाँ उत्पन्न हुए हैं, उन्हें 'आजानज' कहते हैं। आजानज देवों के आनन्द की अपेक्षा 'कर्मदेवों' का आनन्द सौ गुना है। कर्मदेवों की अपेक्षा सृष्टि के आदिकाल में जिन स्थायी देवों की उत्पत्ति हुई हैं, उन स्वभाव सिद्ध देवों के आनन्द को सौ गुना बताया गया है। स्वभाव सिद्ध देवों की अपेक्षा इन्द्र के आनन्द को सौ गुना बताया गया है। इन्द्र के आनन्द की अपेक्षा वृहस्पति के आनन्द को सौ गुना बताया गया है। वृहस्पति के आनन्द की अपेक्षा प्रजापति के आनन्द को सौ गुना बताया गया है। प्रजापति के आनन्द से भी हिरण्यगर्भ ब्रह्मा के आनन्द को सौ गुना बताया गया है।

इस प्रकार यहाँ एक से दूसरे आनन्द की अधिकता का वर्णन करते–करते सबसे बढ़कर हिरण्यगर्भ के आनन्द को बताकर यह स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है कि इस जगत में जितने प्रकार के जो–जो आनन्द देखने, सुनने तथा समझने में आ सकते हैं, वे चाहे कितने ही बड़े क्यों न हों उस पूर्णानन्दस्वरूप परमात्मा के आनन्द की तुलना में बहुत ही तुच्छ है।[27] बृहदारण्यक उपनिषद् में कहा भी है कि ''समस्त प्राणी इसी परमात्मा सम्बन्धी आनन्द के किसी एक अंश को लेकर ही जीते हैं।''[28] चूँकि ब्रह्म का आनन्द असीमित है, मनुष्य के लिए उसका वर्णन आवाच्य है। किन्तु उपनिषदों में थोड़ा संकेत करने की चेष्टा की गयी है ताकी ब्रह्मानन्द की थोड़ी मीमांसा की जा सके। वास्तविकता तो यह है कि ब्रह्म के आनन्द की मीमांसा तो की ही नहीं जा सकती।

निष्कर्षतः यह स्पष्ट है कि मोक्ष में ही आत्मा का पूर्ण प्रसार है। उसी से सनातन आनन्द की प्राप्ति है। भोग या अभ्युदय को मानव जीवन का चरम लक्ष्य नहीं बनाया जा सकता, ये क्षणिक है। सांसारिक मूल्यों की नश्वरता के सम्बन्ध में कठोपनिषद् में नचिकेता के शब्दों में– 'श्वोभावः' अर्थात् केवल कल तक ही रहने वाला कहा है। इसीलिए ससीम वस्तुओं का अन्तिम और अपरिहार्य परिणाम विनाश या तिरोभाव ही है शाश्वत सुख

और परमशान्ति यदि कहीं है तो केवल ब्रह्म के अखण्ड आनन्द में इसीलिए अनन्त आनन्द, अनन्त सत् और अनन्त ज्ञान को ही परमशुभ और मानवजीवन का सर्वोच्च लक्ष्य माना जाता है। साधक जब ज्ञान में आनन्द की उपलब्धि करने लगता है, तो उसके समस्त दुःखों का अभाव हो जाता है। फिर उसके अन्दर एक ऐसी परिपूर्णता आ जाती है कि उसे अपनी समस्त कामनाओं की पूर्ति का सुख अनुभव होने लगता है। इस प्रकार दुःखाभाव और सर्वकामावाप्ति का सुख पाकर वह अपनी कृतकृत्यता पर मुग्ध होकर कह उठता है– ''मैं धन्य हूँ, धन्य हूँ जो आज अपने स्वरूप को पूर्णतया जान गया है। ब्रह्मानन्द मेरे में स्वयं प्रकाशित हो उठा है। मेरे दुःख, मेरा अज्ञान, मेरा कर्त्तव्य सब एक साथ ही नष्ट हो गए हैं। मैं विक्षेप और समाधि से बाहर चला आया हूँ। क्योंकि यह दोनों तो विकारी मन में रहते हैं। अब मैं कृतकृत्य हो गया हूँ। मेरी बुद्धि विष्णु का ध्यान करे या ब्रह्मानन्द में डूब जाय। मैं तो साक्षी हूँ न कुछ करता हूँ, न करवाता हूँ।''[29] ऐसे ही कृतकृत्य हुए ज्ञानी लोग निर्भय होकर मृत्यु का भी अतिथि के समान स्वागत करते हैं।

''कृतकृत्याः प्रतीक्षन्ते मृत्युं प्रिपमिवातिथिम्।''

सन्दर्भ–संकेत

1. सम्पद्याविर्भावः स्वेन शब्दात्।
–वेदान्त दर्शन 4/4/1
2. मुक्तः प्रतिज्ञानात् ।
–वेदान्त दर्शन 4/4/2
3. ब्राह्मणेन जैमिनिरूपन्यासारिभ्यः।
–वेदान्त दर्शन 4/4/5
4. बृह0 उप0, गीता प्रेस, 4/5/15
5. मृत्योः स मृत्युमाप्नोति य इह नानेव पश्यति।
–श्वेता0 उप0 गीता प्रेस, 4/4/19
6. श्वेता0 उप0, गीता प्रेस, प्रस्तावना, पृ0 सं0–12
7. ऋग्वेद 1/140/4 का सायण भाष्य
8. स्ततो वो अमृतः स्थात्। – ऋग्वेद 1/38/4
9. ऋग्वेद 7/53/12, यजुर्वेद 3/60
10. पुरुषार्थ शून्यानां गुणानां प्रति प्रसवः कैवल्यं स्वरूप प्रतिष्ठा वा चित्तिशक्तिरिति।
–योगदर्शन, कैवल्यपाद 34
11. तद्भावात् संयोगाभावो हानं तट् दृशेः कैवल्य्।
– योगदर्शन, साधनपद, 25
12. शास्त्रदीपिका– 125

13. तदत्यन्त विमोक्षोऽपवर्गः। न्यायदर्शन 1/1/22

14. तद्भावे संयोगाभावोऽप्रादुर्भावश्चमोक्षः।

–वैशेषिक दर्शन 5/2/18

15. वायुपुराण 2/42/97

16. बृह0 उप0 2/1/20 पर शाVरभाष्य

17. डॉ0 राधाकृष्णन, भारतीय दर्शन, भाग–2 पृष्ठ– 557

18. अनवच्छिन्नानन्दप्राप्तिः (सिद्धान्त क्लेश संग्रह)

19. इतः कोऽन्वसित मूढात्मा यस्तु स्वार्थे प्रमाद्यति।
दुर्लभं मानुष देहं प्राप्य तत्रापि पौरूषम्।।

–चूडामणि, श्लोक– 5

20. ''यच्च कामसुखं लोके यच्च दिव्यं महत्सुखम्।
तृष्णाक्षयसुखस्यैते नार्हतः षोऽशीं कलाम्।।''

–महाभारत (गीता प्रेस प्रकाशन), शान्तिपर्व पृ0– 4875

21. ''पाप–पुण्य, अर्थ–काम, मिट्टी–सोना, दुःख–सुख सबमें मुक्त पुरुष अनासक्ति बुद्धिवाला होता है।'' वही पृ0–4851

22. ''वेदाहमेतं पुरुषं महान्तं, तमेव विदित्वातिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय।''

–ऋग्वेद, पुरुषसूक्त

23. कबीर ग्रन्थावली, काशी नगरी प्रचारिणी सभा, पद 42, पृ0 102

24. वेदान्त परिभाषा पृ0 352–53, चौखम्भा प्रकाशन, संस्कृत ग्रन्थमाला प्रकाशन।

25. आत्मबोध– 54

26. केनोपनिषद् 2/5

27. तैत्तिरीयोपनिषद् 2/8

28. बृह0 उप0 4/3/32

29. पंचदशी 14 वें में विद्यानन्द प्रकरण में श्लोक– 58–63, 52, 55